ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol.-6* Issue-9* October (Part-1) 2021
Innovation The Research Concept

भारत में न्यायिक सक्रियतावाद के संदर्भ में मानवाधिकार संरक्षण का अध्ययन

Study of Human Rights Protection in the context of Judicial Activism in India

Paper Submission: 10/10/2021, Date of Acceptance: 23/10/2021, Date of Publication: 24/10/2021

रणपाल सिंह
सी॰ एंड वी॰,
शिक्षा विभाग,
जी. एस. एस. एस.
गवर्नमेंट सेकेंडरी स्कूल,
रताकला, कलां, सोनीपत,
हरियाणा, भारत

सारांश

मानवाधिकार संरक्षण के लिए अनेक माध्यम हैं। न्यायपालिका की भूमिका इस संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। मानवाधिकारों के मूल्य वैदिक संस्कृति की नींव में पाए जाते हैं। मानवाधिकार वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। चाहे उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, सामाजिक, आर्थिक स्थिति और व्यवसाय कुछ भी हों। मानवाधिकारों के माध्यम से व्यक्ति अपनी आत्मिक, सामाजिक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है और व्यक्तितत्व का पूर्ण विकास करने में समर्थ होता हैं। तात्विक स्तर पर मानवाधिकारों का अस्तित्व मानव जाति के विकास के साथ संप्रक्त है।

न्यायिक सक्रियता नागरिकों के अधिकारों के संरक्षण और समाज में न्याय को बढ़ावा देने में न्यायपालिका द्वारा निभाई गई सक्रिय भूमिका को दर्शाती है। दूसरे शब्दों में, इसका तात्पर्य न्यायपालिका द्वारा सरकार के अन्य दो अंगों (विधायिका और कार्यपालिका) को उनके संवैधानिक कर्तव्यों के निर्वहन के लिए बाध्य करने की मुखर भूमिका से है। परन्तु आधुनिक अर्थों में मानवाधिकारों का वास्तविक उदय ब्रिटिश मैंग्राकार्टा एवं तत्पश्चात् 1746 ई. में अमेरिकी स्वतन्त्रता घोषणा-पत्र से हुआ। इस घोषणा-पत्र में सार्वजनिक रूप से यह स्वीकार किया गया कि राज्य का मूल दायित्व मानवाधिकारों की रक्षा करना हैं। 1789 ई. में फ्रांस में मानव के सभी व्यक्तिगत अधिकारों के साथ-साथ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, समानता और समरसता को उचित मान-सम्मान दिया गया।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों और मानवीय कानून के लिए मानक स्थापित किए। इस अवधि के दौरान, हमारा देश आजाद हो गया। सन् 1914-18 तक चले प्रथम विश्वयुद्ध और आर्थिक मंदी के दौर के साथ-साथ द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामों ने विश्व को सोचने के लिए बाध्य कर दिया कि व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करना सम्पूर्ण विश्व का दायित्व है। इसी हेतु, 24 अक्टुबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना के बाद 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा एक स्वर में मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा की गयी थी। इस ऐतिहासिक घोषणा के साथ मानवाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय नीति और व्यवस्था के केन्द्रीय स्तम्भ बन गए। मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को “मानवता का महाधिकार पत्र” कहा गया हैं।

The values of human rights are found in the foundation of Vedic culture. Human rights are the rights that every person has as a human being. Irrespective of his nationality, gender, social, economic status and occupation. Through human rights, a person is able to fulfill his spiritual, social and other needs and is able to make full development of personality. The existence of human rights at the elemental level is intertwined with the development of mankind.

Judicial activism refers to the active role played by the judiciary in protecting the rights of citizens and promoting justice in the society. In other words, it refers to the assertive role played by the judiciary to compel the other two organs of government (legislature and executive) to discharge their constitutional duties. But the real rise of human rights in the modern sense came from the British Magna Carta and then the American Declaration of Independence in 1746 AD. In this manifesto it was publicly acknowledged that the basic responsibility of the state is to protect human rights. In France in 1789, all individual rights of human beings as well as personal liberty, equality and harmony were given due respect. The League of Nations established standards for human rights and humanitarian law. During this period, our country became independent. The consequences of World War II, along with the period of World War I and economic recession that lasted from 1914-18, forced the world to think that protecting individual rights is the responsibility of the whole world. For this, after the establishment of the United Nations Convention on 24 October 1945, on 10 December 1948, the Universal Declaration of Human Rights was unanimously adopted by the United Nations General Assembly. With this historic declaration, human rights became a central pillar of international policy and order. The Universal Declaration of Human Rights has been called the "Letter of Human Rights".

मुख्य शब्द मानवाधिकार, न्यायिक सक्रियतावाद, जनहित याचिका, न्यायिक संयम।
Human Rights, Judicial Activism, Public Interest Litigation, Judicial Restraint.

प्रस्तावना

न्यायिक सक्रियता के दौर में न्यायपालिका का कार्यक्षेत्र बढ़ा है, इससे कार्यपालिका पर नियंत्रण बढ़ा है। इसको लेकर कार्यपालिका और विद्यायिका में जबर्दस्त हलचल मची हुई है और यह प्रश्न उठाया जाने लगा है कि क्या कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र की सीमाओं की उल्लंघन हो रहा है दूसरे स्तर पर यह भी माना जा रहा हैं कि सरकार का विधायी और कार्यपालिकीय अंग जब अपने कत्र्तव्यों के निष्पादन में अकर्मण्य हो जाता है, तब सरकार के न्यायिक अंग को कर्मठता का रूख अपनाना पड़ता है।

'न्यायिक सक्रियता' शब्द का प्रयोग प्रायः 'न्यायिक संयम' के विपरीत आशय में किया जाता है। न्यायिक सक्रियता एक बदलते समाज में न्यायिक दृष्टिकोण की एक गतिशील प्रक्रिया है। मानवाधिकारों की आवश्यकता आज सर्वमान्य है फिर भी मानवाधिकार हनन की घटनाएं इतनी अधिक बढ़ गई है कि मानवाधिकारों का संरक्षण विश्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती बन गया है। किसी न किसी रूप में शोषण, अत्याचार, उत्पीड़न एवं आतंकवाद का वर्चस्व हैं। मानवाधिकारों के संरक्षण के लिय मेग्नाकार्टा, बिल ओफ द राइट्स, मानवाधिकार घोषणा पत्र लोकतांत्रिक संविधान के बावजूद आम जन के लिए बुनयादी मानवाधिकारों की सुनिश्चितता संदिग्ध हैं। सैद्धान्तिक स्तर पर मानवाधिकार एक जटिल अवधारणा हैं। विचारधारागत स्तर पर मानवाधिकारों की अनेक व्याख्याएं उपलब्ध है जिनमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता एवं नागरिक अधिकारों की प्राथमिकता अथवा आर्थिक सामाजिक-अधिकारों की वरीयता पर लगातार विवाद रहा हैं। इसी क्रम में अब सामूहिक/सामुदायिक अधिकारों का प्रश्न भी महत्वपूर्ण बना हैं।

व्यावहारिक स्तर पर मानवाधिकारों के सम्बन्ध में सर्वाधिक महत्वपूर्ण यह है कि अधिकारों का वैधानिक या नैतिक अस्तित्व ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उनका प्रभावी संरक्षण आवश्यक हैं।मानवाधिकार संरक्षण के लिए अनेक माध्यम हैं। न्यायपालिका की भूमिका इस संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। न्यायालय ने सीबीआई को सक्षम अदालत में मायावती के खिलाफ चार्जशीट दायर करने की भी छूट दे दी। दूरगामी परिणामों वाले एक महत्वपूर्ण फैसले में अदालत ने कहा कि वर्तमान और पूर्व मंत्रियों सहित किसी लोक सेवक के खिलाफ भ्रष्टाचार का मामला चलाने के लिए किसी तरह की पूर्वानुमति की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि रिश्वत लेना किसी भी दृष्टि से सरकारी कर्तव्य का निर्वहन नहीं होता । न्यायालय ने पुलिस प्रशासन मे पूर्ण स्वायत्ता देने के लिए व्यापक सुधार करने के लिए केंद्र और राज्य सरकारों को निर्देश दिए। इस प्रकार भारत में मानवाधिकार संरक्षण में न्यायपालिका ने अपनी जिम्मेदारी निभाते हुये महत्वपूर्ण योगदान दिया है, तथा भविष्य में भी इसकी संभावनाएं हैं। अतः मानवाधिकार संरक्षण में न्यायपालिका की भूमिका का अध्ययन बदलती परिस्थितियों में निश्चय ही समीचीन है। प्रस्तुत शोध मानवाधिकार संरक्षरण में न्यायपालिका की भूमिका पर केन्द्रित होगा।

न्यायिक सक्रियता उन न्यायिक निर्णयों को प्रकट करती है जिन पर विद्यमान विधि के बजाय व्यक्तिगत या राजनीतिक विचारों पर आधारित होने का संदेह है। भारतीय संविधान मानवाधिकारों की रक्षा के प्रति कटिबद्ध हैं। संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकार (अनुच्छदे 14-32) और नीति निर्देशक तत्वों (36-49) के द्वारा मानवाधिकार संवृद्धि सुरक्षा आदि की गारंटी देता हैं। इसके बावजूद व्यवहारतः भारत में मानवाधिकार हन्न की समस्या भयावह होती जा रही हैं। इसके अनेक कारण है जिनमें सबसे प्रमुख कारण हैं, आर्थिक और सामाजिक एवं स्तरीकृत व्यवस्था।

भारतीय संविधान एवं संविधान प्रदत्त विधियों द्वारा स्वीकृत मानवाधिकारों की रक्षा के संदर्भ में 1980 से भारत के सर्वोच्च न्यायालय के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन आया हैं। एक अनुदारवादी न्यायालय के स्थान पर उसने प्रगतिशील दृष्टिकोण वाले न्यायालय का रूप ग्रहण किया हैं। वह संवैधानिक तथा वैयक्तिक हितों के संरक्षक के साथ-साथ सामाजिक हित के संरक्षक के रूप में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने लगा है। इस दृष्टि कोण के तहत पिछले वर्षो में न्यायालय ने जो निर्णय दिये हैं, उसके आधार पर यह कहा जाने लगा हैं कि सर्वोच्च न्यायालय भारतीय सरकार और राजनीति में केन्द्रीय संस्था बन चुका हैं तथा मानवाधिकार संरक्षण में उसकी भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण हो गयी हैं।

मानवाधिकारों की संकल्पना व संरक्षण

वैयक्तिक स्वतंत्रता के संरक्षक के रूप में न्यायालय ने अपनी न्यायिक पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग कर कई महत्वपूर्ण कानूनों को रद्द किया हैं यथा 1950 के निवारक नजरबन्दी अधिनियम के खंड 14 को अवैध करार दिया। बंगाल विशेष न्यायालय अधिनियम, 1950 की धरा 5 (1) को इस आधार पर गैर-संवैधानिक घोषित किया क्योंकि वह भेदभाव पर आधारित था। बृजभूषण बनाम दिल्ली राज्य-सरकार नामक मुकदमे में प्रेस की स्वतंत्रता के पक्ष में निर्णय दिया। 1967 में गोलकनाथ विवाद में यह निर्णय दिया कि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन का अधिकार नहीं हैं। 24 अप्रैल, 1973 को सर्वोच्च न्यायालय ने केशवानंद भारती के मुकदमें में अपने पूर्व के गोलकनाथ विवाद के निर्णय को उलटतें हुए यह निर्णय दिया कि संसद मूल अधिकारो में संशोधन तो कर सकती हैं लेकिन वह संविधान के मौलिक ढांचे में परिवर्तन नहीं कर सकती। 9 मई 1980 को अपने एक निर्णय में उसने 42 वें संशोधन अधिनियम के खण्ड 55 को रद्द कर दिया। इसमें संसद को संविधान संशोधन के असीमित

अधिकार दिये गये थे। 1983 को फौजदार कानून की धारा 303 को संविधान के अनुच्छेद 14 तथा 21 को विरोधी होने के आधार पर रद्द कर दिया।

मानवाधिकार का विचार आज से 200 वर्ष (फ्रांसीसी दार्शनिक व लेखक रूसों के समय) पुराना है, जिसने आधुनिक युग में आकार मूल अधिकारों का रूप ले लिया तथा कुछ मानव अधिकारों को कई देशों के संविधान में जगह देकर इन्हें न्याय योग्य बना दिया। इसी प्रकार अन्य अनेक कानूनों को संविधान अधिकारों के प्रावधानों के विपरीत होने पर समय-समय पर अपने निर्णयों के द्वारा अवैध घोषित किया गया है। सर्वोच्च न्यायपालिका ने अधिकतर उन कानूनों को रद्द किया है जो अनुच्छेद 14,19 तथा 31 का उल्लंघन करते हैं। इसलिए यह कहा जा सकता हैं कि न्यायिक पुनरावलोकन के माध्यम से सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों के द्वारा 'मानवाधिकारों एवं स्वतंत्रता' के संरक्षक की भूमिका निभायी है।

मानवाधिकार के अंतर्गत कानूनी नैतिक तथा प्राकृतिक अधिकार समाहित हैं, जबकि मूल अधिकार, कानूनी अधिकार हैं, जो कि संविधान द्वारा व्यक्ति को दिये जाते हैं।विगत दशको में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने निर्णयों के द्वारा न केवल एक ' स्वतंत्रता' के संरक्षक की भूमिका निभायी है, बल्कि सामाजिक न्याय के संरक्षण एवं संवर्धन में भी महत्वपूर्ण कार्य किया हैं। यथा स्त्रियों और बच्चों के अधिकारो की रक्षा से सम्बद्ध निर्णय, दलितों के मन्दिर में प्रवेश के अधिकार को मान्यता सम्बन्धि निर्णय, अनुच्छेद 29 तथा 30 की उदार व्याख्या द्वारा अल्पसंख्यको के हितों की रक्षा से संबन्धित निर्णय, मजदूरों की दैनिक मजदूरी बढ़ाने के पक्ष में निर्णय, बोनस को मान्यता से सम्बद्ध निर्णय तथा हड़ताल को एक आवश्यक हथियार मानने का निर्णय, बशर्ते कि इसका प्रयोग भेदभाव पूर्ण नहीं हों। इसी प्रकार 23 अप्रैल 1985 को सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि तलाकशुदा, मुस्लिम स्त्री अपने पहले पति से गुजारा भत्ता लेने की हकदार हैं।

उपरोक्त एवं अन्य निर्णयों द्वारा न्यायालय ने समय समय पर मानवाधिकारों की जो पैरवी की है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि न्यायालय सामाजिक जनहित के प्रति संवेदनशील है और आम नागरिक की लोकतंत्र में आस्था एवं विश्वास का महत्वपूर्ण सम्बल हैं।

शोध विषय वस्तु

प्रस्तुत शोध मानवाधिकारों के संरक्षण में न्यायपालिका द्वारा निभायी गई भूमिका, न्यायिक सक्रियता का अध्ययन किया जायेगा। अन्वेषण किया जायेगा कि न्यायपालिका मानवाधिकारों के संरक्षण में कहाँ तक सफल हुई है साथ ही भावी संभावनाओं का भी अन्वेषण किया जायेगा। सामाजिक जनहित याचिकाओं के संदर्भ में न्यायपालिका के बढ़ते आधार कारकों का भी अध्ययन व विश्लेषण किया जाएगा। शोध के अन्तिम चरण में चयनित न्यायधिशो एवं विभिन्न मानवाधिकार संगठनों से जुडे कर्मज्ञो से साक्षात्कार द्वारा अकादमिक निष्कर्षो को सत्यापित किया जायेगा। राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोग एवं अन्य सरकारी वार्षिक रिपोर्टो का अध्ययन किया जायेगा।

उद्देश्य

1. मानवाधिकारों की अवधारणा समाज के लोगों में विकसित करने का उद्देश्य।
2. मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए नागरिकों को कानूनी प्रावधानों से अवगत कराने का उद्देश्य।
3. देश में शांति और अहिंसा का उपयोग करने से मानवाधिकारों की रक्षा होती है। इस संबंध में नागरिकों को प्रेरित करने का उद्देश्य।

अतः बदलती परिस्थितियों मे न्यायपालिका की भूमिका की प्रासंगिकता का अध्ययन मानवाधिकार दृष्टिकोण से अपेक्षित हैं। यही प्रस्तुत शोध का उद्देश्य हैं।

अनुसंधान क्रियाविधि

यह शोध पत्र सैद्धांतिक रूप से अनुसंधान पद्धति का उपयोग करके तैयार किया गया है इसमें माध्यमिक साहित्य का सवेक्षण करके जानकारी जुटाई गई है। भारतीय संदर्भ में न्यायपालिका की भूमिका मानवाधिकार संरक्षण में अत्यन्त महत्वपूर्ण रही हैं। इस भूमिका ने विवादों को भी जन्म दिया हैं।

मानवाधिकार संरक्षण व जनहित याचिका

अधिकार मानव जीवन कि अनिवार्य आवशयकता है। न्यायपालिका द्वारा मानवाधिकार संरक्षण में जनहित याचिका की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही हैं। जनहित याचिका की उत्पत्ति 1965 में अमेरिका में हुई और 1970 के दशक में इसका परिष्कारमय विकास ब्रिटेन में हुआ। इस विचार को भारत में प्राधान्य मिला 1981 के आरंभ में, जब न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर और पी.एन.भगवती ने एक जनहित याचिका के युग का निर्माण करने वाला ऐतिहासिक निर्णय देते हुए कहा-इसका उद्देश्य भारतवासियों को अपने कष्टों के निवारण के लिए वैधानिक सुनवाई व निर्णय पाने के लिए न्यायालय तक पहुचना संभव बनाना था।

आज के वैश्वीकरण के दौर में व्यापार और अर्थव्यवस्थाओं में खुलापन आया है, आर्थिक विषमाताओं को कम करने के लिए प्रयत्न करने होंगे ताकि वैश्वीकरण से रोजगार और पारंपरिक जीविका स्त्रोतों का कम ह्रास हो। इस प्रकार वैश्वीकरण को सामाजिक प्रगति के साथ लागू करने पर ही बल दिया जाना चाहिए। तत्पश्चात् सर्वोच्च न्यायलय ने 1980 के दशक में अपने कार्यक्षेत्र के दायरे को निरन्तर बढ़ाया हैं। उसने अनुच्छेद 32 के क्षेत्र को विस्तृत करते हुए यह निर्णय दिया है कि अनुच्छेद 32 के तहत कोई संस्था या सार्वजनिक हित से प्रेरित कोई नागरिक किसी ऐसे व्यक्ति के संवैधानिक या विधिक अधिकारों के प्रवर्तन

के लिए याचिका फाइल कर सकता हैं, जो निर्धनता अथवा किसी अन्य कारण से न्यायालय से रिट (याचिका) फाइल करने में सक्षम नहीं हैं।

इस प्रकार न्यायालय ने अपने निर्णय से 'वाद-कारण' और 'पीड़ित व्यक्ति' की संकुचित धारणा के स्थान पर 'लोकहित में कार्यवाही- की व्यापक धारणा को जन्म दिया हैं।

सर्वोच्च न्यायालय ने न्यायिक सक्रियतावाद के अन्तर्गत अनुच्छेद 21 की नवीन व्याख्या की है। पहले यह माना जाता रहा कि कार्यपालिका (सरकार) कोई न कोई कार्यविधि अपनाकर व्यक्ति की स्वंतन्त्रता या जीवन को छीन सकती है, लेकिन 'मेनका गाधी' के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि कार्य विधि विवेक सम्मत और न्यायपूर्ण होनी चाहिए। इस निर्णय के अनुसार अब यह सरकार का दायित्व बना दिया गया है कि वह निर्धन पक्षकार को कानूनी सहायता प्रदान करे अन्यथा अदालती कार्यवाही विलम्ब व व्ययकारी होने के कारण न्याय के स्थान पर अन्याय प्रदान करने लग जाती हैं। इसी प्राकर फौजदारी मामलों मे अनावश्यक विलम्ब को 'विवेकपूर्ण' नहीं माना गया हैं।

न्यायपालिका को संविधान के अंतर्गत एक सक्रिय भूमिका सौंपी गई है। सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है कि ' कार्यपलिका के स्वविवेक पर नियंत्रण' किया जाना चाहिए। एक निर्णय में उसने कहा कि राज्य के स्वविवेक का आधार राज्य के नीति का वह निर्देशक सिद्वान्त होना चाहिए जिसमें सार्वजनिक हित के मानदण्ड को प्रस्तुत किया गया हैं। साथ ही यह भी कहा कि सरकार की कार्यवाही को सम्पन्न करने के लिय जो कार्यविधि अपनायी जाये वह भी विवेक सम्मत और न्यायपूर्ण होनी चाहिए। 1996-98 के काल में सर्वोच्च न्यायालय ने जनहित याचिकाओं के माध्यम से शीर्ष पर व्याप्त भ्रष्टाचार को निशाना बनाया। उदाहरण के लिए जैन हवाला काण्ड की याचिका को लिया जा सकता हैं। इसी प्रकार एडवोकेट तिवारी की जनहित याचिका पर सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी मकानों के आवंटन में भारी भ्रष्टाचार को देखते हुए पूर्व मंत्रियों सहित 72 अतिविशिष्ट बंगले खाली करने के नोटिस दिये। राजनीतिज्ञों के खिलाफ बेहद विवादास्पद मामले जनहित याचिका के रूप में न्यायालय के समक्ष लाये गये। इस संदर्भ में लक्खू भाई पाठक तथा सेंट किट्स मामलों में न्यायालय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

मानवाधिकार और न्यायिक सक्रियता

न्यायिक सक्रियता के दौर में न्यायपालिका का कार्यक्षेत्र बढ़ा है, इससे कार्यपालिका पर नियंत्रण बढ़ा है। इसको लेकर कार्यपालिका और विद्यायिका में जबर्दस्त हलचल मची हुई है और यह प्रश्न उठाया जाने लगा है कि क्या कार्यपालिका, विधायिका एवं न्यायपालिका के कार्यक्षेत्र की सीमाओं की उल्लंघन हो रहा है दूसरे स्तर पर यह भी माना जा रहा हैं कि सरकार का विधायी और कार्यपालिकीय अंग जब अपने कत्र्तव्यों के निष्पादन में अकर्मण्य हो जाता है, तब सरकार के न्यायिक अंग को कर्मठता का रूख अपनाना पड़ता है। न्यायालय की इसी क्रियाशीलता को न्यायिक क्रियाशीलता या न्यायिक सक्रियतावाद के नामकरण से वैद्यता की गयी।

न्यायिक क्रियाशीलता का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र में विधि के शासन को बनाये रखना है और विधि का शासन वह अपेक्षा करता है कि सरकार के सभी अंग अपने उन सभी कृत्यों का पालन करें, जो कि संविधान द्वारा उन्हें दिया गया है। इस तरह विधानपालिका यदि अपेक्षित विधान का निर्माण नहीं करती और कार्यपालिका उस विधान का निष्पादन नहीं करती, कानून तोड़ने वाले को गिरफ्तार नहीं करती और उनके विरूद्ध साक्ष्य को एकत्र नहीं करती, तब यह कहा जा सकता है कि देश में कानून का पूर्ण शासन है? न्यायपालिका यदि विधानपालिका और कार्यपालिका का साथ न देकर उसे अपनी भूमिका का निर्वहन तो करती है जो कि उसे संविधान के संरक्षक और प्रतिरक्षक के रूप में निभाना है। तो उसे देश की लोकतंत्रात्मक आधारशिला की रक्षा के लिये न्यायिक हस्तक्षेप के रूप में देखा जाना चाहिए।

न्यायिक सक्रियता निर्णय के एक ऐसे सिद्धांत को संदर्भित करती है जो विधि की भावना और बदलते समय पर विचार करती है, जबकि न्यायिक संयम विधि की कठोर व्याख्या और विधिक पूर्व-दृष्टांत पर निर्भर करता है। लोकहित के मुकदमें की संकल्पना के विकास के साथ-साथ न्यायिक क्रियाशीलता की संकल्पना को भी एक महत्वपूर्ण विकास पक्ष से गुजरना पड़ा है।

इसी के परिणामस्वरूप अब न्यायालय लोकहित के मुकदमें को विचार करने के लिए स्वीकार करने लगे है, जो कि लोकात्मा से अभिभूत ऐसे नागरिकों अथवा संगठनों के आवेदन पर परिरक्षा में रखे गये किसी व्यक्ति के अथवा व्यक्तियों के किसी वर्ग अथवा समूह के किसी मूल अधिकार के प्रवर्तन के लिये किये गये है जो कि गरीबी, असमर्थता, सामाजिक या आर्थिक असुविधा की अपनी स्थिति के कारण अनुतोष के लिये न्यायालय की शरण जाने में अपने को असहाय पाते हैं।

इन्ही लोकहित के मुकदमों के कारण न्यायालय ने क्रियाशील बनकर सरकार के दो अन्य अंगों कार्यपालिका और विधानपालिका को लोकहित में निर्देश जारी करने और लोक-कर्तव्यों के प्रवर्तन का अवसर प्राप्त हुआ है। पर्यावरण संरक्षण, मानवाधिकार, श्रम कल्याण, पुलिस अथवा केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अपराध का अन्वेषण कराने जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर न्यायालय ने अपनी क्रियाशीलता का परिचय देते हुये लोकहित के मुकदमों में महत्वपूर्ण निर्देश जारी किये हैं।

।

मानवाधिकार की अवधारणा और परिभाषा

भारत में मानवाधिकार को कानूनी अधिकार देने के लिए 1993 में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। तत्पश्चात् महिला आयोग का भी गठन किया गया तथा मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993 भारतीय संसद द्वारा पारित किया गया जो मानवाधिकार संरक्षण की दिशा में मील का पत्थर है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत मानवाधिकारों को इस प्रकार परिभाषित किया गया है -

"मानव अधिकार से व्यक्ति के जीवन प्राण, स्वतन्त्रता, समानता एवं गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत है, जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत अथवा अन्तराष्ट्रीय प्रसंविदाओं से सन्निहित है और भारत के न्यायालयों द्वारा पर्वतनीय है(धारा 2(1) घ)

मानवाधिकारों की यह परिभाषा अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं एवं कार्यसमयों में समाहित तथा भारतीय संविधान द्वारा प्रत्याभूत जीवन स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिगत गरिमा से सम्बद्ध अधिकारों को भी सम्मिलित किया गया है इसका मूल लक्ष्य मानव जीवन और उसकी गरिमा को सुरक्षा प्रदान करना है।

अक्सर यह प्रश्न उठाया जाता है कि मानवाधिकारों एवं मूल अधिकारों में काई भिन्नता नहीं है जबकि कहा जा सकता है कि मानव अधिकार ऐसे अधिकार है जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव प्राणी होने के नाते उपलब्ध हैं, भले ही उस व्यक्ति की सामाजिक व आर्थिक स्थिति कैसी ही हो। जबकि मूल अधिकार उन अधिकारों को कहते हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को संविधान द्वारा प्रदान किये जाते हैं।

मानवाधिकार के अंतर्गत कानूनी नैतिक तथा प्राकृतिक अधिकार समाहित हैं, जबकि मूल अधिकार, कानूनी अधिकार हैं, जो कि संविधान द्वारा व्यक्ति को दिये जाते हैं।

मानवाधिकार नैतिकता पर आधारित है तथा इनके पीछे मूल अधिकारों की तरह कोई बाध्यकारी तथा कानूनी शक्ति नहीं है।

पांतजलि शास्त्री (मुख्य न्यायाधीश) ने गोपालन बनाम मद्रास राज्य के विवाद में कहा कि "मौलिक अधिकार की मुख्य विशेषता यह है कि वे राज्य द्वारा पारित विधियों से ऊपर है" जबकि मानवाधिकारों को राज्य द्वारा ही लागू एवं सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व है।

मानवाधिकार का विचार आज से 200 वर्ष (फ्रांसीसी दार्शनिक व लेखक रूसों के समय) पुराना है, जिसने आधुनिक युग में आकार मूल अधिकारों का रूप ले लिया तथा कुछ मानव अधिकारों को कई देशों के संविधान में जगह देकर इन्हें न्याय योग्य बना दिया।

मानवाधिकार अन्तर्राष्ट्रीय हैं, इसके लिए यू.एन.ओ. द्वारा 10 दिसम्बर, 1948 को "मानवाधिकार का घोषणा पत्र" जारी किया गया है जबकि मूल अधिकार राष्ट्रीय है, ये किसी देश के लोगों को ही उस देश के संविधान के अनुसार प्राप्त है - अतः मानवाधिकार अधिक व्यापक धारणा है एवं न्यायपालिका की भूमिका इनके संरक्षण में उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी मूल अधिकारो के संरक्षण में।

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

भारत में मानव अधिकार संरक्षणः न्यायिक सक्रियतावाद के संदर्भ में अनेक पक्षो का गंभीर शोध एवं प्रकाशन हुये हैं। उपलब्ध साहित्य में से कतिपय प्रकाशित अध्ययन निम्नांकित हैः

अमृत्य सेन अपनी पुस्तक "डेवलपमेन्ट एज फ्रीड़म, (आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2002, नई दिल्ली) प्रस्तुत पुस्तक में - मानव अधिकार का मुद्दा आज के चर्चित विषयों में से एक है। इस पर पश्चिम का प्रभाव ज्यादा है। अतः विश्व के अन्य देशों में भी इसे विस्तार से पहुंचाने के लिए तथा वहा पर लागू कर के लिए समितियों आपस में बराबर करके, इसके सकारात्मक पहलू पर ध्यान दिया जाना अपेक्षित है।

मानव अधिकार साहित्य के विकास का एक महत्वपूर्ण भाग है एवं मानव अधिकारों को नैतिक दावों के रूप में देखना सर्वश्रेष्ठ है, इसे संवैधानिक अधिकार की भांति नहीं देखना चाहिए। अधिकार हमेशा कर्तव्य से संबंधित होते हैं। एशिया में सत्तावादी राजनैतिक व्यवस्था को न्याय संगत ठहराने के लिए एशियाई मूल्यों का हस्तांतरण किया जाता है, यहा संस्कृति और सभ्यता एक दूसरे पर अध्यारोपित करती है इसलिए एशियन मूल्यों का सामान्यीकरण करना कठिन है। अमेरिका और यूरोप में राजनैतिक स्वतंत्रता और प्रजातंत्र को पाश्चात्य संस्कृति का मूलभूत प्राचीन लक्षण माना जाता है जो कि एशिया की संस्कृति में दिखाई नहीं देता।

कन्फ्यूशियस ने राज्य की अंधभक्ति का समर्थन नहीं किया, उसके अनुसार एशियाई मूल्यों के दो मुख्य आधार स्तम्भ है - परिवार के प्रति वफादारी तथा राज्य के प्रति आज्ञाकारी रहना।

अशोक महान के लेखों द्वारा उसकी सहनशीलता के प्रति झुकाव की जानकारी मिलती है तथा नागरिकों के आपसी व्यवहार के लिए भी उन्होंने इस पर अधिक जोर दिया। अकबर ने सामाजिक और धार्मिक व्यवहार में भिन्नताओं के साथ-साथ कई तरह के मानवाधिकारों को भी स्वीकार किया जिसमें पूजा की स्वतंत्रता और धार्मिक अनुष्ठानों की स्वतंत्रता भी सम्मिलित थी।

आज के वैश्वीकरण के दौर में व्यापार और अर्थव्यवस्थाओं में खुलापन आया है, आर्थिक विषमाताओं को कम करने के लिए प्रयत्न करने होंगे ताकि वैश्वीकरण से रोजगार और पारंपरिक जीविका स्त्रोतों का कम ह्रास हो। इस प्रकार वैश्वीकरण को सामाजिक प्रगति के साथ लागू करने पर ही बल दिया जाना चाहिए। कम्प्यूटर और इंटरनेट जैसी बढ़ती सुविधाऐं न केवल आर्थिक संभावनाओं को बदलती हैं बल्कि इस तरह के तकनीकी परिवर्तनों से लोगों का जीवन प्रभावित होता है। इसी कारण वर्तमान में मूलभूत शिक्षा, स्वतंत्र मीडिया, नागरिक अधिकारों, चुनाव आदि को इतना महत्व दिया जाता है। क्योंकि वृहद स्तर पर मानवाधिकारों को सम्मिलित कर लेते हैं।

उपर्युक्त कतिपय पुस्तकों की समीक्षा का तात्पर्य यह है कि अनेक पक्षों पर अनुसंधान एवं अध्ययन किया जा चुका है। किन्तु प्रस्तुत शोध पत्र में अध्ययनकर्ता अपनी सीमाओं में रहते हुए उन तथ्यों को तलाशने के प्रयास में रहेगा जिन पर अभी तक प्रकाश नहीं डाला गया है। मानवाधिकार संरक्षण में प्रयासरत न्यायपालिका की निरपेक्ष भूमिका का आंकलन अध्ययन का मुख्य केन्द्र बिन्दु होगा।

सुझाव

1. मानवाधिकार संरक्षण नागरिकों का अधिकार है, अतः नागरिकों को इस बारे में जानना जरूरी है।
2. प्रशासन को मानवाधिकार संरक्षण और नायिक सक्रियता के बारे में समाज में जागरूकता लाने के लिए लगातार प्रयास करना चाहिए
3. देश में शांति और अहिंसा के माध्यम से मानवाधिकार संरक्षण की रक्षा के लिए प्रत्येक नागरिक को इस संबंध में जागरूक होना जरूरी है।

निष्कर्ष

किसी भी देश में मानवाधिकार संरक्षण नागरिकों के मानस के आधार पर निर्धारित किया जाता है, सकारात्मक दृष्टिकोण वाले नागरिक एक देश की सबसे मूल्यवान पूँजी होते हैं, जहाँ सामाजिक सद्भाव और शांति के कारण मानव अधिकारों की रक्षा की जाती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कौशिक, आशा नारी सशक्तिकरणः विमर्श एवं यथार्थ, पोईन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004*
2. *https://www.un.org/en/observances/nonviolence-day*
3. *गाबा, ओ.पी. राजनीति विज्ञान विश्वकोश, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 1995*
4. *http://www.ielrc.org / content / 90003, pdf*
5. *ह्यूमन राइट्स न्यूज लेटर, मानव अधिकार आयोग(भरत) (प्रासांगिक अंक)*
6. *https://nhrc.nic.in/*
7. *अग्रवाल, बाल मुकुन्द हमारी न्यायपालिका, सपना पब्लिसर्श, नई दिल्ली 2000*
8. *आडवाणी, पूर्णिमा इण्डियन ज्यूडीशियरी, ए ट्रिब्यूट दिल्ली, 1977*
9. *एल्सटन, फिलिपि मैकिगं स्पेश फोर ह्यूमन राइट्सः दी केस आफ दी राइट्स टू डेवलपमेन्ट, हार्वर्ड ह्यूमन राइट्स इयर बुक, वो. 1, 1988।*
10. *कपूर, सुधीर ह्यूमन राइट्स इन 21 सेन्चूरी, मंगल दीप पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2001.*
11. *किशोर, राज मानवाधिकारों का संघर्ष, वाणि प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995*
12. *कौशिक, आशा मानवाधिकार और राज्यः बदलते संदर्भ उभरते आयाम, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2004*
13. *खा, मोहम्मद हनीफ शास्त्री पवित्रा वेदों में मानवाधिकार, शाहस्ता प्रकाशन, अखिल भारतीय सद्भावना मंच, नई दिल्ली, 2000।*
14. *खन्ना, जस्टिस हंसराज अदालती पुनरीक्षण या संसद से टकराव, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 1977*
15. *चतुर्वेदी, सतीश मानवाधिकार और सुयक्त राष्ट्र संघ, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2002।*
16. *जसवाल, निष्ठा ह्यूमन राइट्स एण्ड ला, ए.पी.एच. पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1996*
17. *जैन, कमलेश न्यायपालिका कसोटी पर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001*
18. *जैन, कुसुम फाउन्डेशन आफ ह्यूमन राइट्सः ए क्रिटिकल अप्रेसल आफ दी थियरीज, आफ मार्टीन एण्ड राध कृष्णन यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा.लि. जयपुर 2001।*
19. *जाखड़, दिलिप मानव अधिकार और पुलिस संगठन, यूनिवर्सिटी बुक हाउस, प्रा.लि., जयपुर 2000।*
20. *त्यागी, योकेश के ह्यूमन राइट्स इन इण्डिया - एन.आवर.व्यू, सेग पब्लिकेशन, नई दिल्ली 1992*
21. *शर्मा, कैलाश विधिक उपचार-जनसाधारण के लिये, किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1997*
22. *थॉमस, ऐना ह्यूमन राइट्स इन एशिया; वीमेनस पर्स पेक्टिव्स ए रिपोर्ट फ्रोर्म दी एशियन वीमेन्स ह्यूमन राइट्स कान्सल्टेशन, बैंकाक थाईलैन्ड, 1988*
23. *नरसिम्ह, आर.के. ह्यूमन राईट्स एण्ड सोशल जस्टिस, न्यू देहली कामनवेल्थ पब्लिशर्स, 1999।*
24. *नाटाणी, प्रकाश नारायण मानव अधिकार और कत्र्तव्य पोइन्टर पब्लिसर्श, जयपुर 2003*
25. *रामालिघंम, पी. ग्लीम्फसेज ओफ ह्यूमन राइटस, पी.आर. बुक्स, देहली 1999*
26. *पाटिल, वी.टी. ह्यूमन राइट्सः थर्ड मिलेनियम विजन, न्यू देहली, आथर प्रेस, 2001।*
27. *पूरणमल मानवाधिकार, सामाजिक न्याय और भारत का संविधान, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2003*
28. *बक्सी, उपेन्द्र फ्रोम ह्यूमन राइट्स टू दी राइट टू बी ह्यूमन सम हिरयरीसज, देहलीः लोकायन.1988*